Chapter. 1

प्रथम अध्याय :

गुजरात में हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास

* गुजरात शब्द की व्युत्पत्ति एवं नामकरण
* गुजरात का व्यवसायिक परिवेश और हिन्दी साहित्य
* धार्मिक पृष्ठभूमि

प्रथम अध्याय :

गुजरात में हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का मूल विषय है - **''गुजरात के प्रमुख धार्मिक सम्प्रदायों की हिन्दी साहित्य को देन।''** इस विषय पर चर्चा करने से पूर्व हम सर्वप्रथम गुजरात की भौगोलिक सीमा-मार्यादा, 'गुजरात' शब्द की व्युत्पत्ति तथा गुजरात में हिन्दी का उद्‌भव एवं विकास इन विषयों पर संक्षिप्त में चर्चा करेंगे तत्पश्चात् हम शोध के मूल विषय की ओर पदार्पण करेंगे।

गुजरात का भौगोलिक विस्तार :

गुजरात भारत देश के पश्चिम क्षेत्र में आया हुआ प्रदेश है जिसके उत्तर में राजस्थान, पूर्व में मध्यप्रदेश, दक्षिण में माहाराष्ट्र राज्य आये हुए हैं। गुजरात की भूमि प्राकृतिक सम्पदा से सम्पन्न है। सन् 1960 में भाषावार राज्यों की माँग के परिणामस्वरूप गुजरात और माहाराष्ट्र दो भिन्न-भिन्न राज्य के रूप में अस्तित्व में आये। महाराष्ट्र राज्य के उत्तरी क्षेत्र खानदेश से आगे कच्छ, मरू प्रदेश तक फैले एक विस्तार को जहाँ गुजराती भाषा बोली जाती है, उसे गुजरात संज्ञा दी गई है।

गुजरात राज्य की सीमा तथा उसके विस्तार के परिपेक्ष में अलग-अलग विद्वानों ने अपने संशोधनार्थ विविध मत-एवं विचार प्रस्तुत किये हैं।

शिवप्रसादजी ने 'गुजरात एक दर्शन' में लिखा है कि गुजरात का समग्र विस्तार

उष्ण कटिबन्ध में आया हुआ है, उसका दक्षिण-उत्तर विस्तार 20.3 और 24.5 उत्तर अक्षांश के बीच आता है। जबकि पूर्व पश्चिम विस्तार 68.2 और 74.4 पूर्व रेखांश के बीच आता है। गुजरात पश्चिम हिन्द के किनारे उत्तर भाग में है। गुजरात के उत्तर में मारवाड़ मेवाड, सिरोही और कच्छ का मरुस्थल तथा अरावली गिरिमाला के आबू, आरासुर, तारंगा और साबरकांठा की पर्वतमालाएँ आती हैं। पूर्व में बांसवाड़ा, खानदेश, अलीराजपुर और झाबुआ तथा सह्याद्रि गिरिमालाएँ हैं। पश्चिम की ओर अरबी समुद्र, कच्छ की खाडियाँ हैं। पूर्व की सरहद पर सातपुड़ा और पश्चिम घाट की शाखाएँ हैं।[1]

श्री अरविंद कुमार गुजरात की सीमा उत्तर में राजस्थान दक्षिण में महाराष्ट्र पूर्व में खानदेश और मालवा तथा पश्चिम में अरब सागर तक फैली हुई मानते हैं।

श्री के. का. शास्त्री ने भी कुछ इसी प्रकार से गुजरात की सीमा रेखा पर विचार किया है, उनके मतानुसार उत्तर में पाकिस्तानी सिन्ध की एवं राजस्थान के आबू की उपत्यका पुरानी सिरोही राज्य की दक्षिणी सीमा, पुराना उदयपुर राज्य की पश्चिमी सीमा, दक्षिण में महाराष्ट्र के नाशिक एवं थाना जिला की उत्तरीय सीमा और पश्चिम में सौराष्ट्र कच्छ को अपने में समाविष्ट करके विशाल समुद्र है।[2]

इसी प्रकार डॉ. रामकुमार गुप्त ने अपने ढंग से गुजरात की सीमा-रेखा का अवलोकन करते हुए निर्देश किया है - उनके दृष्टिकोण से उत्तर गुजरात मही तथा दमण गंगा का मध्यवर्तीय प्रदेश, दमण गंगा का दक्षिण भू-भाग जिसमें सालीसट एवं बम्बई का मिश्रभाषी प्रदेश भी समाविष्ट हो जाता है।

श्री नागर ने पूर्व में दाहोद से पश्चिम में द्वारका तक फैले हुए और उत्तर में आबू से दक्षिण में दमण गंगा तक के गुजराती भाषी प्रदेश को गुजरात की संज्ञा दी है।[3]

इस प्रकार की भूमि उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम दिशाओं में मरु प्रदेश, पहाड़ों जंगलों एवं छिछले और अशान्त समुद्र से घीरी हुई है।

गुजरात की उपरोक्त भौगोलिक सीमाओं पर विचार करने से सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि गुजरात प्रदेश के उत्तर तथा उत्तर-पूर्वी सीमाओं के अलावा अन्य सभी सीमाओं पर प्राकृतिक अवरोध है। फलतः पश्चिमोत्तर में सिन्ध तथा दक्षिण-पूर्व में महाराष्ट्र से मिले

होने पर भी गुजरात सांस्कृतिक, सामाजिक आदि सभी दृष्टियों से हिन्दी भाषी प्रदेश राजस्थान तथा मालवा के अधिक निकट हैं। गुजरात तथा हिन्दी भाषा प्रदेश के बीच की शेष, प्राकृतिक अंवरोधों के न होने के कारण इन दोनों प्रदेशों के बीच की सांस्कृतिक आदान-प्रदान की परम्परा प्राचीन काल से ही मिलती है।

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा का कथन है कि भौगोलिक दृष्टि से (उत्तर से) विन्ध्य के पार पहुँचने के लिए गुजरात प्रदेश सबसे अधिक सुगम है। इसलिए बहुत प्राचीन काल से यह मध्यदेश का उपनिवेश-सा रहा है। आशय यह कि गुजरात को मध्यदेशीय भाषा-साहित्य तथा संस्कृति के दक्षिण प्रदेश का सुगम मार्ग कहा जा सकता है। इसलिए गुजरात में मध्यदेशीय भाषा हिन्दी का प्रसार एवं उसमें साहित्य सर्जन की परंपरा का प्रारंभ स्वाभाविक प्रतीत होता है।

गुजरात शब्द की व्युत्पत्ति एवं नामकरण :

गुजरात शब्द की व्युत्पत्ति के संदर्भ में विद्वानों ने अपने शोध-प्रबन्ध के द्वारा अलग-अलग मत प्रकट किये हैं। कई विद्वानों के मतानुसार ''गुजरात'' नाम ''गूजर'' नामक ''गोप'' जाति ने दिया है। इस जाति के कितने ही कुल राजकुल में नांदोद का चेदि राजवंश ''गुर्जर-नृपतिवंश'' संज्ञा से विख्यात था। मारवाड़ इन गुर्जरों का उस समय प्रधान निवास प्रदेश था। आज के गुजरात में इनकी व्यापकता वहाँ से हुई थी। ''हर्षचरित'' के लेखक बाणभट्ट ने सम्राट हर्षवर्धन के पिता प्रभाकरवर्धन को ''गुर्जरप्रजागर'' कहा है, इन गुर्जर लोगों से मारवाड़ के ही गुर्जरों की ओर स्पष्टतया संकेत है।

दसवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में सुप्रसिद्ध अरबी यात्री अलबरुनी द्वारा अपने प्रवास ग्रंथ ''अलहिन्द'' में एक प्रदेश का नाम गुज्रात स्पष्ट रूप में दिया गया है। (इ. स. 1970-1030) इनके मत से वह प्रदेश आबू से लेकर जयपूर तक का था। उत्कीर्ण लेखों में संस्कृतिकृत 'गुर्जरप्राभूमि', 'गुर्जरत्रामण्डल', 'गुर्जरता', 'प्राकृत', 'गुज्जरता' इन नामों से सांकेतित प्रदेश भी आबू से लेकर उत्तर का विशाल मारवाड़ प्रदेश ही था। इस बात का समर्थन हमें हिन्दी साहित्य कोष में भी प्राप्त है। यथा, दसवीं शताब्दी पूर्व इस प्रदेश का नाम 'गुर्जरत्रा', 'गुर्जरत्त्रा मंडल', 'गुर्जर गुज्जर देश' आदि रूपों में उल्लेखित मिलता है जिसका सम्बंध-प्रायः पाँचवी सदी उत्तरार्ध से छठी सदी पूर्वार्ध तक भारत में प्रविष्ट होनेवाली गुर्जर

जाति से है।[4]

''गुजरात'' संज्ञा प्रयोग का निर्देश करते हुए प्राध्यापक डॉ. के. का. शास्त्री ने इतिहास में लिखा है कि अपने देश (प्रदेश) को गुजरात नाम मिला, वह उस समय के पूर्व आबू के उत्तरी ओर के किनारे जयपूर तक फैली हुई गुर्जर प्रजा के कारण ही था।[5]

सं.1272 में कवि नाल्हने अल्बरुनी के बाद आबू के दक्षिण के प्रदेश का उल्लेख बीसलदेव रासो में किया था। प्रसिद्ध इतिहासविद् डॉ. हरिप्रसाद शास्त्री ने इस संबंध में और भी विस्तार से समझाते हुए गुजराती के इतिहास ग्रंथ में लिखा है - ''कच्छ'' शब्द का प्रयोग उस प्रदेश की भूमि के लिए पाणिनि के समय से मिलता है। सौराष्ट्र को पहले सुराष्ट्र कहते थे, जो बाद में सौरष्ट्र कहलाया।[6]

मैत्रककाल में ''लाट''[7] नाम शायद समस्त गुजरात के लिए प्रयोग में आने लगा। दसवीं शताब्दी में अब उत्तर गुजरात में राजस्थान के चौलुक्यवंश की सत्ता की स्थापना हुई, तब भिन्नमाल के आसपास के प्रदेश के लिए प्रयोग में आनेवाला गुर्जर नाम गुजरात के राज्य प्रदेश के लिए प्रयोजित हुआ । आगे चलकर गुर्जर भूमि या गुर्जर देश नाम के बदले गुजरात रूप प्रचलित हुआ, जिसका सर्वप्रथम प्रयोग चौलुक्य (सोलंकी) काल के मध्य 12वीं शताब्दी में प्राप्त होता है।

गुजरात शब्द का मूल स्व. नरसिंहराव द्विवेतिया ने अरबी बहुवचन के स्त्रीलिंगवाची प्रत्यय ''आत'' से संयुक्त ''गुज्रआत'', ''गुज्रात'' रूप में भी माना है। जिस प्रदेश में गूजरों की संख्या अधिक थी उस प्रदेश का नाम गुज्रात पड़ा और अरबी बहुवचन के कारण निष्पन्न गुजरात यह इस देश का नाम भी स्त्रीलिंगवाची रहा। समय के साथ आबू के दक्षिण में स्थित वर्तमान गुजरात प्रदेश के लिए ''गुर्जत्रा'' या ''गुज्जरता'' नाम प्रयुक्त होने लगा। इस प्रकार दसवीं शताब्दी से इस प्रदेश को जो नाम मिला, वह आज भी चल रहा है।

वर्तमान गुजरात प्रदेश के लिए देशवाचक ''गुजरात'' नाम द्वितीय सोलंकी भीमदेव के समय में रूढ़ बना था इसका सबसे पहला प्रमाण तो नाल्ह कृत **''बीसलदेव रासो (सन् 1216) के समन्द सोरठ सारी गुजरात''** और उसके बाद ''आबू रास'' (सन् 1233) के **''गुजरात-धुव-समुधरण राणड भूणपराउ''** इन वचनों से मिलता है।

गुजरात की तत्कालीन परिस्थितियाँ और हिन्दी साहित्य का उद्भव एवं विकास :

यदि हम हिन्दी भाषा के उद्भव एवं विकास की ओर ध्यान केन्द्रित करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि गुजरात में हिन्दी भाषा के प्रयोग 12वीं शताब्दी से मिलने लगते हैं और पन्द्रहवीं शताब्दी तक आते-आते हिन्दी भाषा का प्रचार-प्रसार एवं अनुशीलन अन्य अहिन्दी प्रदेशों की अपेक्षाकृत यहाँ अधिक दिखलाई देने लगता है।[8]

भारत में दो भाषापरिवारों की भाषा बोली जाती है।[9] भोरोपीय परिवार से आर्यभाषाओं के रूप में उत्तर की समस्त भाषाएँ एवं द्रविड़ से दक्षिण की चार भाषाएँ (तमिल, तेलगू, मलयालम, कन्नड) विकसित हुईं। आर्यभाषा का उद्गम वैदिक संस्कृत और उससे क्रमशः संस्कृत, संस्कृत से पालि, पालि से प्राकृत, प्राकृत से अपभ्रंश और अपभ्रंश से हिन्दी, गुजराती, मराठी, राजस्थानी, पंजाबी आदि भाषाओं का विकास हुआ।

हिन्दी और गुजराती दोनों भाषाओं का उद्गम पश्चिम शौरसेनी अपभ्रंश में है। इन भाषाओं के उद्भव एवं विकास की प्रक्रिया को देखते हुए विद्वानों ने इनकी पहचान अलग-अलग ढंग से की है।

यह तो निर्विवाद रूप से स्वीकार करना ही होगा कि गुजरात और हिन्दी का संबंध आज का नहीं, प्राचीनकाल का है। क्योंकि ग्रियर्सन ने हिन्दी को प्रारंभ से ही आंतरभाषा के रूप में विकसित माना है। अतः इस तथ्य के संदर्भ में भी हिन्दी का सम्बन्ध सभी प्रदेशों के साथ रहा है, एवं गुजरात के साथ भी एक भाविक प्रक्रिया ही माना जाना चाहिए। हिन्दी साहित्य की रचना यहाँ के लिए कोई अद्भूत वस्तु नहीं हैं।

यह बात विचारने योग्य है ही कि गुजरात के एक अहिन्दी भाषी प्रदेश होते हुए भी गुजरात में हिन्दी को इतना महत्व दिया गया कि संविधान में उसे दूसरी राजभाषा का स्थान प्राप्त हुआ और गुजराती भाषा के साहित्य लेखन के साथ-साथ उत्कृष्ठ रचनाएँ हिन्दी भाषा में लिखी गईं।

गुजरात में हिन्दी भाषा के उद्भव-विकास और गुजरात का हिन्दी भाषा की तरफ आकर्षण देखें तो उस में निहित कारण ध्यातव्य होते हैं।

भौगोलिक दृष्टि से देखने पर ज्ञात होगा कि गुजरात चारों और से हिन्दी भाषी

प्रदेशों से घिरा हुआ है। गुजरात के पश्चिम उत्तर में कच्छ प्रदेश के निकटस्थ पाकिस्तान है, जहाँ हिन्दी मिश्रित उर्दू का प्रयोग होता है। उत्तर में राजस्थान के अधिकतर लोग हिन्दी भाषा ही बोलते हैं, पूर्व में मध्यप्रदेश की (राज) भाषा हिन्दी है, दक्षिण में महाराष्ट्र राज्य में हिन्दी को फलने-फूलने का पूर्ण सुयोग मिला है जिससे गुजरात में हिन्दी भाषा का सीधा प्रभाव देखा जा सकता है। इस प्रकार अपने पारिपार्श्विक आबोहवा में हिन्दी की सहज प्रचुरता के कारण गुजरात भी इस भाषा के रंग में इस प्रकार रंग गया कि यहाँ के कवि, लेखक आदि ने गुजराती के साथ-साथ हिन्दी में प्रचुर मात्रा में अपनी अभिव्यक्ति को प्रस्तुत किया (साहित्य सर्जन किया)।

हिन्दी की भाँति गुजरात के हिन्दी साहित्य का प्रारंभ भी पाटण निवासी हेमचन्द्राचार्य के ''सिद्धहेम'' से माना जा सकता है, क्योंकि उसमें अपभ्रंशों से निकली हिन्दी का रूप झलकता है। इसके अतिरिक्त वढ़वाण के जैनाचार्य के मेरुतुंग के ''प्रबंधचिन्तामणि'' के दोहों में देखा जा सकता है। श्रीधरकृत, रणमल्ल छंद (सं. 1454) और पद्मनाभ कृत ''कान्हड़दे प्रबंध'' (सं.1512) में भाषा का स्वरूप (प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी) और स्पष्ट हो जाता है। पर जिसे हम अधिकारपूर्वक हिन्दी कह सकें, उस हिन्दी (ब्रजभाषा) के दर्शन सबसे पहले 15वीं शताब्दी के गुजराती कवि भालण की रचनाओं में होते है।[10]

गुजरात के मध्यकाल के प्रथम हिन्दी कवि के रूप में डॉ. नागर ने ''भालण'' को मान्य किया है। ''भालण'', ''नरसिंह महेता'', ''केशवराव'' आदि कवियों ने गुजराती के साथ-साथ हिन्दी में भी काव्य रचना की है। इनका विस्तृत परिचय आगे के अध्याय में दिया गया है।

भाषा के विकास में राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। प्राचीन काल से ही राजनीतिक परिस्थितियों का गुजरात के हिन्दी भाषा-साहित्य के उद्‌भव विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। गुजरात में अनेक विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा किये गये आक्रमण और बाद में उनके गुजरात में स्थायी होने के फलस्वरूप मालवा, राजपूताना के साथ उज्जैन एवं मथुरा आदि हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेशों के साथ भावात्मक दृष्टि से भी गुजरात और निकट आए।

डॉ. हरीश त्रिवेदी के अनुसार **''महाभारत में भगवान श्री कृष्ण का मथुरा छोड़कर**

द्वारिका जाकर बसने का उल्लेख करते हुए कहा गया है, ''मथुरा संपरित्याज्जगता द्वारावतीपुरम्।''[11] भगवान श्री कृष्ण का यादवों के साथ यह महाभिनिष्क्रमण और द्वारिका को अपनी कर्म-भूमि बनाने का निर्णय राजनीतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना है।

इसके अतिरिक्त श्री कृष्ण के प्रपौत्र वज्रनाथ से अर्जुन के द्वारा इन्द्रप्रस्थ में अभिषेक कराना,[12] युधिष्ठिर द्वारा गुजरात की यात्रा करना आदि महाभारत से जुड़ी घटनाएँ भी भाषायी संबंधों की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। चन्द्रगुप्त मौर्य (इ. पू. 322-498 के राष्ट्रीय राज्यपाल) द्वारा गिरनार के पास सुदर्शन नामक विशाल जलाशय बनवाना, अशोक के द्वारा उसमें से विभिन्न प्रदेशों को जोड़ने वाली नहरें तैयार करवाना, चौदह धर्म लेखों की पर्तें गिरनार के शैल पर अंकित करवाना अदि हमारे विशाल भौगोलिक एवं सांस्कृतिक ऐक्य के प्रतीक हैं, ऐसा डॉ. पाठक का मत है।

डॉ. पाठक ने साहित्य के विकास में विभिन्न राजनीतिक घटनाओं के महत्वपूर्ण योगदान को रेखांकित किया है। उनके मतानुसार **सौराष्ट्र की राजधानी गिरनार को वल्लभी ले जाने वाले मैत्रक वंशीय परममाहेश्वर (शैव) राजाओं के द्वारा कायावरोहण में शैव मत के लकुलेशाचार्य द्वारा प्रवर्तित पाशुपत मत का स्वीकार करना और समस्त सौराष्ट्र, उत्तर गुजरात, मध्य गुजरात एवं पश्चिम मालवा तक शासन करना, ध्रुवसेन द्वितीय के समय में चीनी यात्री ह्यूएनसांग (7वीं शताब्दी) का भरूच, मालवा, खेटकर (खेड़ा) आनन्दपुर (वड़नगर) वल्लभी एवं गिरनार की यात्रा करना, उसकी उपस्थिति में कन्नौज में सम्राट हर्षवर्धन द्वारा बुलाई गई धर्म परिषद में गुजरात के ध्रुवसेन का अग्रिम स्थान प्राप्त करना, सातवीं सदी के आरंभ में नंदीपुर (नाँदोद वर्तमान राजपीपला) में गुर्जर नृपति वंश के द्वारा अपनी सत्ता की स्थापना कर सूरत, भरूच ने गुजरात को हिन्दी भाषा भीषी विशाल एवं समृद्ध प्रदेशों के साथ ऐक्य बनाए रखने में सहयोग प्रदान किया है।**[13]

विदेशियों के आक्रमणों के कारण गुजरात में विधर्मी एवं विदेशी भाषाओं के प्रभाव का समय प्रारंभ होता है जो महमूद के कारण, अलाउद्दीन खिलजी आदि तुर्कों एवं मुगलों के आक्रमणों के कारण क्रमशः बढ़ता ही गया।

1573में अकबर द्वारा गुजरात के सूबे की नवीन सीमायें निर्धारित करने से गुजरात

तथा मध्यप्रदेश पुनः एक शासन सूत्र में बंध गये । इन विदेशी एवं विधर्मी जातियों के आक्रमण के परिणाम-स्वरूप, उनके सैनिकों, उनके साथ आए हुए फकीरों और राज्य संस्थापकों के जनता से साहित्य के उद्‌भव और विकास पर प्रभाव पड़ा। बहुत से मुसलमान हिन्दू साधुओं का वेश धारण कर मंदिरों एवं मठों में रह जाते थे। प्रसिद्ध कवि शेखसादी सोमनाथ के मंदिर में कुछ दिन रह गया था इस बात का जिक्र उसने खुद अपनी ''वास्ता'' नामक किताब में किया है।[14]

औरंगजेब द्वारा संरक्षण के अभाव सें हिन्दी की अवनति हुई परन्तु हिन्दू-दरबारों तथा अनेक धार्मिक संप्रदायों के प्रश्रय में हिन्दी साहित्य विकसित होता रहा ।

गुजरात पर मराठों के आक्रमण (1664-1743 तक) होते रहे थे। उसके बाद गायकवाडों और पेशवाओं के बीच शासन के लिए संघर्ष होता रहा। सन् 1772 में बड़ौदा में गायकवाड शासन स्थापित हुआ । इस अव्यवस्थित काल में द्वितीय श्रोणी के उत्तम साहित्य का निमार्ण होता रहा। सन् 1818 ई. में गुजरात में मराठा सत्ता का अन्त हो गया और सत्ता ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथों में आ गई। पुनः शांति स्थापित हुई और गुजारत में समाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक विकास की लहर चल पड़ी।

ब्रिटिश सरकार ने सौराष्ट्र, कच्छ तथा गुजरात के पालनपुर, बड़ौदा, रेवाकांठा, खंभात, नारुकोट धरमपुर, वांसदा तथा सचीन राज्यों में ऐजेन्सी प्रथा कायम की। सन् 1857 की विल्पव की चिगांरियों से पूर्व ही गुजरात में सांस्कृतिक क्रांति शुरू हो चुकी थी। सन् 1826 से 1856 के बीच शिक्षा साहित्य और सामाजिक क्रांति का नवीन युग सन् 1857 के बाद ही शुरू हुआ।[15]

गुजरात में बादशाह अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, बहादुरशाह (शासन काल सन् 1526-1537) आदि मुगल बादशाह तथा राजा जयसिंह आदि राजपूत शासकों तथा मालवादि के राठोड़, गोहिल, चावड़ा, वाधेला, प्रतिहार, चौहाण, चालुक्य, गुप्त आदि विभिन्न वंशीय हिन्दू राजाओं के हिन्दी प्रेम एवं राज्याश्रय तथा संरक्षण दिए जाने के कारण हिन्दी काव्य को फलने-फूलने, पल्लवित होने का पर्याप्त अवसर प्राप्त हुआ ।

मुगल बादशाहों ने भारतवर्ष की संस्कृति, धर्म एवं भाषा को बहुत सम्मान दिया। कला और साहित्य प्रेमी मुगल बादशाह अकबर के शासनकाल में खड़ी बोली को गुजरात में

पल्लवित होने का पूर्ण अवसर प्राप्त हुआ। मध्यकाल के सुप्रसिद्ध कवि अखा, प्रेमानंद, शामल आदि के उत्थान का समय मुगलकाल ही है।

ललित मोहन अवस्थी ने **''खड़ी बोली का सामाजिक आन्दोलन''** में लिखा है कि अकबर के हिन्दी प्रेम का परिचय तो उनका हिन्दी कवियों को आश्रय देना, पुरस्कार से प्रोत्साहित करना तथा स्वयं भी कविता करने से मिलता है। उनके बारे में कहा जाता है कि उन्होंने अपने पुत्र जहाँगीर तथा पोते खुसरो को छः वर्ष की अवस्था में हिन्दी सीखने के लिए भूदत ब्राह्मणों के सुपुर्द कर दिया था। डॉ. नामवरसिंह ने कहा है कि ई.स. 1243-1324 में अमीर खुसरो की रचनाओं से भी खड़ीबोली के नमूने लिए जा सकते है।[16] आक्रमणकारी मुसलमान यहाँ शासन करने हेतु आये और यहाँ अपने साथ वे अपनी संस्कृति, सामाजिक व्यवस्था, उपासना पद्धति तथा नैतिक धारणा लाये थे। अतः इसके आदान प्रदान के लिए एक मध्यस्थ भाषास, जो दोनों की समझ में आये, की आवश्यकता थी। गुजरातियों तथा मुसलमानों ने इसके लिए हिन्दी भाषा का चयन किया। अतः ई.स.1253 से गुजरात में हिन्दी का आरम्भ स्पष्ट रूप से मुसलमानों के निकट सम्पर्क के कारण मुगलकाल से ही है। इस प्रकार ध्यातव्य होता है कि हिन्दी को गुजरात में प्रचारित करने में मुसलमानों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

सन् 1747 में कच्छ-भुज में ब्रजभाषा पाठशाला का निर्माण इन्हीं राजाओं के हिन्दी प्रेम का एक सर्वोत्तम उदाहरण है। इस काव्यशाला का निर्माण गुजरात के महाराज लखपति सिंह ने किया था।[17] हिन्दी क्षेत्र में ब्रजभाषा एवं काव्य शिक्षा का शैक्षिक केन्द्र स्थापित होना यह हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक अभूतपूर्व एवं विरल घटना के समान है। महाराव लखपति सिंहजी ने अपनी राजधानी भुज में ब्रजभाषा के प्रचार एवं साहित्य सृजन हेतु इस काव्यशाला की स्थापना की थी। केवल यही एक कार्य इस क्षेत्र के हिन्दी प्रेम का स्वर्णाक्षर मंडित प्रमाणपत्र है। इस काव्यशाला में ब्रजभाषा के माध्यम से काव्य के दशांगों की शिक्षा दी जाती थी। महराव लखपति सिंह स्वयं भी कवि थे। इनके रचित ग्रंथों में ''लखपति श्रृंगार'', ''लखपति मान'', ''मंजरी'', ''सुरतरंगिनी'', ''राग-सागर'' आदि प्राप्त हैं। यह पाठशाला छन्द और काव्यों के अध्ययन-अध्यापन का एक अच्छा केन्द्र थी। अहिन्दी भाषी विद्वानों द्वारा ब्रजभाषा में काव्यरचना की परम्परा तो महत्वपूर्ण है ही परन्तु ब्रजभाषा

पाठशाला की स्थापना और निःशुल्क शिक्षा देने की बात विशेष महत्वपूर्ण है। इस काव्यशाला ने गुजरात एवं भारत देश को अनगिनत कवि दिए, फलतः इन कवियों द्वारा निर्मित साहित्य प्रचुर मात्रा में प्राप्त हुआ। महाराव लखपति सिंह के समर्थ व्यक्तित्व ने गुजरात के हिन्दी काव्य के पल्लवन, पोषण एवं संवर्धन के लिये बड़ा उल्लेखनीय कार्य किया था। उनके द्वारा निर्मित इस काव्यशाला में कवि शिक्षा इच्छुक बाल कवि उससे सुदीर्घकाल तक लाभान्वित एवं उपकृत होते रहे । आज तक किसी काव्य-शास्त्रीय समस्या के हल के लिये भुज की ''ब्रजभाषा काव्यशाला'' का शिक्षित-दीक्षित कवि उपयुक्त एवं प्रमाणभूत माना जाता रहा है। गुजरात में इस प्रकार का राज्याश्रय एवं कवि शिक्षा प्रदान करनेवाले लखपति ही शासक हुए। गुजरात में रीतिकालीन कला कृतियों का जो विकास हुआ, कवि-प्रतिभा को जो प्रोत्साहन मिला, इसका कारण लखपति सिंह द्वारा प्रस्थापित ब्रजभाषा काव्यशाला ही थी। कच्छ जैसे अहिन्दी प्रदेश में लखपति सिंह द्वारा किया गया यह कार्य अपने आप में अनूठा एवं अभूतपूर्व है। जिसके लिए हमारी भावी पीढ़ी उनकी ऋणी बन गई है।

गुजरात के राजा महाराजाओं के हिन्दी प्रेम का इससे बढ़कर ज्वलन्त उदाहरण और क्या होगा कि हिन्दी कवियों को आश्रय देने और हिन्दी सीखने की सुविधाएँ प्रदान करने के साथ-साथ वे स्वयं भी हिन्दी में कविता करते थे। राजकोट के राजकुमार महेरामण सिंहजी कृत ''प्रवीण सागर'', कच्छ के महाराव लखपति सिंह द्वारा रचित ''लखपति शृंगार ग्रंथ'' तथा सौराष्ट्र के झाला राजाओं में राजा साहब अमर सिहंजी (1804 से 1843 ई.) रणमलसिंह और राजा मानसिंह द्वारा रचित हिन्दी रचनाएं उल्लेखनीय है।[18]

चांदोद निवासी रससिद्ध भक्तकवि दयाराम (1777-1852 ई.) गुजरात के उत्तर मध्यकालीन कृष्णभक्त कवियों में सिरमोर के समान है। इस काल में दयाराम ने प्रथम श्रेणी का साहित्य लिखा।

आधुनिक काल का प्रारंभ सन् 1850 ई. के बाद हुआ महात्मागांधी, सरदार पटेल, मोरारजी देसाई आदि स्वातंत्र्य सैनानियों द्वारा भारत तथा गुजरात में राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार करने का महत्वपूर्ण कार्य किया गया। सन् 1920 में गांधीजी ने गुजरात में हिन्दी के प्रचार-प्रसार तथा विकास के लिए गुजरात विद्यापीठ की स्थापना की। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने कुलपति के रूप में हिन्दी भाषा की खूब सेवा की।

आर्य समाज के निर्माणकर्ता संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती की हिन्दी सेवा अभूतपूर्व है। इनके बहुचर्चित ग्रंथ ''सत्यार्थ प्रकाश'', ''आर्याभिविनय व्यवहार भातु'' और ''गोकरुणानिधि'' आदि हिन्दी में लिखे गये हैं।

हिन्दी भाषा को अखिल भारतीय स्तर पर स्थान देने के लिए गुजरात के कई साहित्यकारों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। ऐसे साहित्यकारों में एक नाम विशेष रूप से महत्वपूर्ण रहा है, जो मूलतः मराठी भाषी थे। वे काकासाहेब कालेलर हैं। इन्होंने गांधीजी के आदेशानुसार गुजरात में हिन्दी का व्यापक प्रचार किया। इनके द्वारा रचित प्रायः सभी कृतियाँ हिन्दी में अनूदित है। इन्होंने स्वयं अपनी रचनाओं का निर्माण परिमार्जित हिन्दी में किया है। बड़ौदा के राजा श्रीमंत सयाजीराव गायकवाड भी हिन्दी भाषा के लिए प्रयत्नशील रहे उन्होंने अपने राज्यकाल दौरान अपने राज्याधीन गुजरात में हिन्दी की विविध स्तरीय परीक्षाओं का आयोजन किया। हिन्दी को राष्ट्रभाषा का स्थान प्राप्त कराने के लिए इन्होंने सशक्त प्रयत्न किये।

गुजरात का व्यवसायिक परिवेश और हिन्दी साहित्य :

भौगोलिक दृष्टि से गुजरात प्रदेश अन्यान्य व्यवसायिकों, पर्यटकों, धार्मिक संतों एवं प्रचारकों तथा कलाहिंदों को विशेष रूप से आकर्षित करता आया है। विभिन्न प्रान्तों के साथ गुजरात का व्यापारिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक सम्बन्ध बनाए रखने में गुजरात प्रदेश की भौगोलिक रचना विशेष रूप से सहायक सिद्ध हुई है।

डॉ. रामसिंह राठौड़ के अनुसार माण्डवी बन्दरगाह से बैलगाड़ियों एवं ऊंटों पर विभिन्न व्यापारिक वस्तुओं को लेकर मारवाड़ पाली तथा बनारस तक जाते थे।[19]

डॉ. रमणलाल पाठक के मतानुसार **भूमि की उर्वरता के कारण विविध प्रकार के धान्य, कपास आदि की विपुल पैदाइश, समतल भू-पृष्ठ में घास चारे की सदा हरियाली के कारण गाय, भैंस, बैल, ऊँट, भेड़ें आदि पशुधन की अधिकता रही है। नर्मदा और ताप्ती जैसी बड़ी नदियों के अतिरिक्त पश्चिम के अरबी समुद्र, खंभात की खाड़ी और कच्छ की खाड़ी में व्यापारी बेड़ों के द्वारा विदेशों के साथ रहे समृद्ध व्यापारिक सम्बन्धों के कारण गुजरात को ''सोने की चिड़िया'' एवं ''भारत का नन्दनवन'' कहा जाता था।**[20]

मुगल शासक अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ के समय में गुजरात में खंभात सूरत और धांगध्रा के बन्दरगाहों से व्यापार प्रारंभ होते ही इनका विस्तार शनैः शनैः बढ़ता गया। अतः मुसलमानों का प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से गुजरात की जनता पर प्रभाव पड़ा। अरबस्तान, ईरान, बगदाद, बसरा के व्यापारी गुजरात आ बसे थे। सिंधु-सुलतान मार्ग उनके लिए अनुकूल था। इस प्रकार गुजरात के पश्चिमी समुद्र-तटों के बरड़ा, द्वारका, दीव, खंभात, भरूच, प्रभास जैसे बड़े-बड़े अन्तरराष्ट्रीय बन्दरगाहों एवं समुद्र-नगरों का हिन्दी भाषा-भाषी तथा अन्य भाषा-भाषी प्रदेशों एवं विदेशों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

सन् 1673में कच्छ के राव भारमलजी खैंगार और दिल्ली के सुल्तान जहाँगीर के बीच हुए राजनीतिक समझौते के अन्तर्गत मक्का शरीफ के यात्रियों को बिना किसी कर वसूली के कच्छ के बन्दरगाहों से हज-यात्रा की सुविधा दी गई और इसके बदले कच्छ राज्य की खण्डणी माफ की गई थी। फलस्वरूप राजस्थान, गुजरात एवं उतर भारत के मुसलमानों का आवागमन गुजरात में प्रारंभ हो गया।[21] मुसलमानों की गुजरात के प्रति विशेष अभिरुचि थी, सूरत वस्तुतः मुगल जमाने का 'बाबुल मक्का' और 'बंदर मुबारक' था।

अन्य प्रांतों से व्यापार हेतु आनेवाले लोग अपने घर परिवार के साथ यहाँ पर स्थायी हो जाते और इस प्रदेश के लोग इनसे स्वदेशियों की तरह ही व्यवहार करते थे। भारत आनेवाले विदेशी व्यापारी व्यापार करने के लिए हिन्दी सीखते थे।[22]

इस प्रकार गुजरात में व्यापारिक व्यवहार के कारण शनैः शनैः हिन्दी भाषा का विकास होता गया।

गुजरात का धार्मिक संगीत भी हिन्दी के विकास के लिए सहायक रहा है।[23] संगीत की यह परंपरा ब्रज प्रदेश से आती है वस्तुतः हिन्दी के ब्रजभाषा प्रचार में इस धार्मिक संगीत ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। चापानेर निवासी बैजू इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। ब्रज की कृष्ण भक्ति संगीत परम्परा राजस्थान श्रीनाथजी होकर गुजरात में भी प्रसारित हुई है, परिणामस्वरूप गुजरात का भक्ति संगीत ब्रज की संगीत परम्परा से पुष्ट हुआ है। गुजरात में विशेष भक्ति साहित्य के प्रचार का श्रेय भक्त नरसिंह महेता एवं मीराबाई को जाता है। इसके पश्चात् पुष्टि सम्प्रदाय के वल्लभाचार्य और उनके पुत्र विठ्ठलनाथजी की वाणी ब्रज होकर

गुजरात जाने से गुजरात का भक्ति संगीत ब्रज के संगीत से गूँज उठा।

वैष्णव धर्म के बाद स्वामीनारायण सम्प्रदाय के कवि प्रेमानन्द और ब्रह्मानंद ने गुजराती के साथ-साथ ब्रजभाषा में भी भजनों की रचना की।

गुजरात की कुछ जातियाँ ऐसी हैं जिनका मूल हिन्दी भाषी प्रदेशों में है, जैसे लुहाणा। लुहाणा राम के पुत्र लव इन वंशज हैं अर्थात् उनका उद्‌गम स्थान अयोध्या है। गुजरात में आकर बसने के बाद सामाजिक कार्यों से मेल जोल बढ़ा आपस में शादी ब्याह होने लगे। अपने वंश का विस्तार करके हिन्दी की पुष्ट परंपरा को इस देश में स्थापित किया ।

चारणों का आगमन भी सौराष्ट्र कच्छ और मारवाड़ से हुआ। अपनी भूमि को वीररस से सींचकर गुजरात की भूमि पर भी वीररस के बीज बोये । अपनी कवित्य शक्ति और बुद्धिमत्ता से यहाँ के राज दरबारों में इनको आश्रय मिला । ये लोग डिंगल पिंगल भाषा के साथ अपनी-अपनी संस्कृति, त्यौहार, रीतरिवाज आदि भी अपने साथ लेकर आये।

निरंतर स्थलांतर करने वाले बंजार गुजरात में आये और अपनी भाषा मारवाड़ी मिश्रित हिन्दी की छाप छोड़ गये। इस प्रकार हिन्दी भाषा की सुदृढ़ परंपरा गुजरात में फलने फूलने लगी।

चैत्र अमावस्या को नर्मदा नदी तटस्थ सुरपानेश्वर का मेला तथा कार्तिकी पूनम के दिन शामलाजी का मेला भी इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है।

सुरपानेश्वर स्थान गुजरात खानदेश और मध्यप्रदेश की हद (त्रिभेटे) पर स्थित है, इसलिए तीनों प्रदेशों का सांस्कृतिक और भाषागत आदान प्रदान होता रहता था। परन्तु नर्मदा सरोवर परियोजना के कारण अब यह स्थान ही बन्द हो गया है।

शामलाजी का मेला साबरकांठा जिला का एक महत्वपूर्ण मेला है। जिसमें राजस्थान के अनेक लोग भाग लेने आते हैं।

धार्मिक पृष्ठभूमि :

हज़ारों वर्ष पूर्व महर्षि कणाद ने उन्नति की व्याख्या करते हुए कहा था ''यथोऽभ्यदयानेः श्रेयस सिद्धिः स धर्मः'' जिस माध्यम से अभ्युदय अर्थात् भौतिक दृष्टि से सभी प्रकार की उन्नति प्राप्त होती हैं, उसे धर्म कहते हैं।

गुजरात में हिन्दी के विकास में जिस प्रकार गुजरात की भौगोलिक, सामाजिक राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थिति का महत्वपूर्ण योगदान रहा है उसी प्रकार तत्कालीन समाज की धार्मिक परिस्थिति एवं गुजरात में विभिन्न धार्मिक संप्रदायों का प्रचार-प्रसार भी गुजरात में हिन्दी के विकास के लिए एक महत्वपूर्ण कारण सिद्ध होता है।

प्राचीन काल से ही गुजरात की प्रजा धर्मोपासक रही है जिसके आधारभूत प्रमाण भी हमें प्राप्त होते हैं। हम जानते हैं कि धार्मिक जीवन पर राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। जब सामाजिक जीवन विशृंखल हो जाता है तभी धर्म और आध्यात्मिक जीवन में ह्रास परिलक्षित होता है। धर्म द्वारा परिचालित होने के कारण समाज का प्रभाव धर्म का दर्जा नीचे नहीं गिरा सकता।

धर्म को राजनीति एवं समाज का मेरूदंड कहा जाता है। राजनीतिक तथा समाजिक संगठनों के मूलतः धर्म से जूड़े होने के कारण मध्यकालीन भारतीय जनता एक ऐसे धार्मिक वातावरण में जी रही थी जिसकी प्राप्ति उसे प्राचीन परम्परा के माध्यम से हूई थी। वैदिककाल से प्रायः सभी धर्मों का अस्तित्व, भारतभूमि में किसी न किसी धर्म से जुड़ा था।

यदि हम गुजरात प्रदेश की बात करें तो, वर्तमान गुजरात राज्य में प्रायः वे सभी धार्मिक सम्प्रदाय मिल जाते हैं जो भारत के विभिन्न प्रातों में प्रचलित हैं परन्तु मध्यकाल में जब हिन्दी साहित्य की परम्परा गुजरात में प्रारम्भ होती है उस समय गुजरात की धार्मिक स्थिति अधिक भिन्न न होते हुए भी कुछ भिन्न थी। उस समय यवन आक्रमणकारियों के आक्रमण दिन-प्रतिदिन बढ़ रहे थे। सामान्यतः तो इस यवन जाति ने भारतीय संस्कृति और धर्म को छिन्न-भिन्न कर दिया जिसका प्रभाव देश के विभिन्न प्रदेशों में सामानान्तर से पड़ा। इन आक्रमणकारियों ने दान की वृत्ति से, तो कभी साधुता के आवरण में अनेक छलपूर्ण प्रयत्न किये। पवित्र देवमन्दिर ध्वस्त किये गये अनेक ग्रंथालय जला दिये गये तथा कीमती रत्न आदि को आत्मसात कर लिया गया। ऐसे समय में यहाँ की प्रजा धर्मिकता की ओर आकर्षित होने लगी। 18वीं शती के प्रथम तीन दशकों तक धर्म के क्षेत्र में अनेक पाखण्ड समाज में व्याप्त थे। प्रजा में अनेक प्रकार के अंधविश्वासों तथा दूषित कर्म-काण्डों का प्रचार हो रहा था उस समय समाज मुख्यतः शिव, शाक्त, वैष्णव इन तीन धर्मोपासकों में बँट चुका था। तीनों धर्मों के उपासक अपने-अपने धर्म को श्रेष्ठता प्रदान करने हेतु दूसरे धर्मों को निरंतर नीचे गिराने

का प्रयत्न करते थे। शाक्त धर्म शिव और विष्णु से ऊपर महाशक्ति का स्थान मानकर अपनी श्रेष्ठता प्रचारित करता था, तो शिव और विष्णु के उपासक अपने इष्टों को श्रेष्ठ मानकर उनकी साधना को प्रचारित करते थे। मराठी प्रजा करारी काली की पूजा अर्चना करती तो राजपूत शिव शंकर को इष्ट मानकर उनकी साधना करते । इस भूमि की व्यापारी शुद्ध शाकाहारी प्रजा विष्णु को इष्ट मानकर अपनी आस्था उनके प्रति प्रदर्शित करती थी तथा ब्राह्मण इन तीनों में समानता रखते क्योंकि उन्हें अपना गुरू पद अच्युत रखना था। भगवान शिव यों तो कल्याण के मूर्त रूप पशुपति और भक्त वत्सल्य भोलानाथ भी थे किन्तु प्रलय सम्बन्धी उन पर आरोपित भीषण दायित्व के पक्ष को लेकर शैव योगियों आदि में अनेक वीभत्स क्रियाएँ उदित हुई। एक ओर जहाँ भोले बाबा की उपासना की जाती वहीं दूसरी ओर शिव के भैरव, बीरभद्र आदि गणों के नाम पर अघोरी, तांत्रिक के सम्प्रदाय बढ़ गये। गोरखपंथी, सहजिया वीरा सैवी, कापालिक, अवधूत, कनकटे सन्यासी आदि अनेक प्रकार के विचित्र वेश भाषा, क्रिया-कलाप, साधना-सिद्धि से मंडित पंथों का गुजरात में 18वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में खूब प्रचार था। 18वीं शती से पूर्व गुजरात में वैदिक हिन्दू धर्म के पश्यात् बौद्ध धर्म और जैन धर्म का प्रवेश विद्वानों ने चन्द्रगुप्त मौर्य के समय के पश्चात् माना है। इ. स. 500-1000 के बीच गुजरात में जैन धर्म का अपेक्षाकृत अधिक प्रचार हुआ परन्तु इ. स. 500 के आसपास ब्राह्मण तथा बौद्ध धर्म का गुजरात में प्राधान्य इतिहास-प्रसिद्ध है। शनैः शनैः बौद्ध धर्म गुजरात की भूमि से लुप्त होता गया और हेमचंद्राचार्य के विशेष प्रयास से उसकी जगह जैन धर्म गुजरात और राजस्थान में केन्द्रित हो गया था। इस धर्म का विशेष प्रचार राजस्थान और गुजरात की वैष्णव जाति तक ही सीमित रहा। मध्यकालीन राजस्थानी गुजराती साहित्य की सम्पन्नता का अधिकांश श्रेय इन्हीं जैन धर्मावलम्बियों को जाता है ।

18वीं शती के उत्तरार्ध में रामानंद ने उत्तर भारत में उद्धव सम्प्रदाय का निर्माण कर प्रचार किया। जैसा कि आगे कहा गया है कि गुजरात में शैव और वैष्णवों में बहुत काल से विरोध रहता आया है। काठी, राजपूत और माराठों में शाक्त मत प्रचलित रहा है। मध्यम वर्ग में वैष्णव मत प्रचलित थे। इस के साथ-साथ तत्कालीन समय में गुजरात में निर्गुण सम्प्रदाय का भी अच्छा प्रभाव दृष्टिगत होता है जिसके अंतर्गत कबीर पंथी, दादूपंथी आदि सम्प्रदायों का प्रचार प्रसार हो रहा था प्रत्येक धार्मिक सम्प्रपदाय अपने को पुष्ट बनाने के प्रयत्नों में लग

गया। पारस्परिक असहिष्णुता तथा तद्जन्य संघर्ष भी होते रहे। असहिष्णुता और परस्पर में एक-दूसरे को गिराना ही रहा। तात्पर्य यह कि यहाँ वे मत, पंथ या सम्प्रदाय जिनका अविर्भाव गुजरात में 18वीं शती से पहले ही हो चुका था तथा उनमें सजीवता एवं संप्राणता के स्थान पर दंभ, पाखण्ड, छलना, प्रवचन, अंधविश्वास आदि दुर्गुण उत्पन्न हो गये थे। जिनके कारण वे सभी पूर्णतया पतन के कगार पर खड़े थे। लोग न उनके उच्च सिद्धांतों पर ध्यान देते न उनके व्यवहारों को मानते ही थे। यही कारण है कि इस शती के हिन्दू धर्म की दशा अत्यंत दयनीय हो गई। ऐसे संत-साधुओं पर से जनता का विश्वास उठ चुका था। यही कारण था कि जब प्रजा के समक्ष शुद्ध, अहिंसक, वैदिक सदाचारपूर्ण वैष्णव धर्म प्रचारित हुआ तो अनेक लोगों ने प्रसन्न होकर उसे सद्भाग्य मानकर स्वीकार किया। वैसे तो 14वीं 15वीं शती में वैष्णव मत का प्रचलन प्रारंभ हो गया था। किन्तु 16वीं शती में गुजरात में महाप्रभु वल्लभाचार्य एवं उनके पुत्र विठ्ठलनाथ ने गुजरात के गाँव-गाँव में घूमकर इसका प्रचार किया। परिणामस्वरूप गुजरात में अलग-अलग स्थानों पर अपनी बैठक स्थापित की। इस वैष्णव सम्प्रदाय में कई अन्य सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव भी हुआ जैसे, वल्लभसंप्रदाय, राधावल्लभ संप्रदाय, निम्बार्क संप्रदाय, विष्णुस्वामी संप्रदाय, हरिदासी संप्रदाय, गौड़ीय सम्प्रदाय आदि। इसी वैष्णव धर्म के परिष्कृत रूप स्वामीनाराण सम्प्रदाय का आविर्भाव सं. 1856 में स्वामी सहजानंद द्वारा हुआ। इसके अतिरिक्त गुजरात की भूमि पर मध्यकाल में प्रणामी सम्प्रदाय, रविभाण सम्प्रदाय, सूफी सम्प्रदाय का भी बहुत अच्छा प्रचार एवं प्रसार हुआ।

इस प्रकार दृष्टिगत होता है कि मध्यकाल की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक परिस्थिति, बाह्य आक्रमण आदि के कारण दिशाशून्य प्रजा किस प्रकार धार्मिकता की ओर आकृष्ट हुई और किस प्रकार विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों का इस भूमि पर प्रचार-प्रसार हुआ। इन सम्प्रदायों के आचार्यों एवं संत अपने सम्प्रदाय के प्रचार-प्रसार के लिए हिन्दी में प्रवचन देते, साहित्य सर्जन करते, ग्रंथ एवं कविताओं की रचना भी करते थे।

वैष्णव कवि भालण, नरसिंह महेता, वैजनाथ, कृष्णदास, मीरा, मुकुन्द, गुगली, त्रिकमदास, दयाराम, हर्षदास, गिरधर एवं जानसुता प्रतापबाला ने ब्रजभाषा में भक्तिगान और वैराग्य से पूर्ण काव्यसर्जन करके गुजरात को हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान दिलाया है।

निर्गुण संत कवि दादू, अखा, प्राणनाथ, जीवनदास, प्रीतम, भाणदास, मोरार साहब, निरांत, धीरां भगत, करुणासागर, भोजा भगत, दीन दरवेश आदि ने हिन्दी में काव्यरचना करके इस भाषा को जनभाषा का रूप दिया। सूफी संत कवि शेख बहारुद्दीन बाझन, काजी महमूद दरीयायी शाह, शाहअली गामदनि आदि ने भी हिन्दी भाषा में अपने विचार प्रकट करके भाषा के प्रति समदृष्टि का पाठ पढ़ाया। स्वामीनारायण एवं जैन सम्प्रदाय के आचार्यों एवं संतों ने प्रचुर मात्रा में हिन्दी में साहित्यसर्जन किया है। जिसकी विस्तृत चर्चा हम अगले अध्याय में करेंगे।

इस प्रकार अहिन्दी-भाषी समझे जानेवाले इस प्रदेश के अंचल से उपलब्ध विपुल साहित्य संपदा को देखकर यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि हिन्दी-साहित्य को गुजरात की यह देन मूक होते हुए भी महान है।[24]

इस प्रकार उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि गुजरात में हिन्दी के उद्‌भव एवं विकास के लिए यहाँ की राजनीतिक, सामाजिक, भौगोलिक, व्यापारिक परिस्थिति तथा यहाँ के मुगल बादशाह एवं राजपूत राजाओं के हिन्दी प्रेम, विभिन्न धार्मिक संप्रदायों के संत एवं आचार्यों का अपने सम्प्रदाय के विकास, प्रचार-प्रसार के लिए हिन्दी भाषा का चयन आदि का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

अगले अध्याय में वैष्णव सम्प्रदायों के विविध साहित्य में हिन्दी के विस्तृत प्रयोग की चर्चा करेंगे। धर्म और संस्कृति भाषा के मूल आधार रहे हैं। अतः वैष्णव सम्प्रदायों के विवरणात्मक विश्लेषण के साथ-साथ अन्य सम्प्रदायों के हिन्दी के प्रायोगिक प्रस्तार को समीक्षित करेंगे।

प्रथम अध्याय : संदर्भ-सूचि

1) गुजरात एक दर्शन शिवप्रसाद वी. राजगोर, पृ. 1
2) गुजरात की हिन्दी को देन-श्री केशवराम
3) गुजराती भाषा और साहित्य के विकास में गुजरात का योगदान डॉ. नागर, पृ.1
4) हिन्दी साहित्य कोष, भाग - पृ. 267
5) मध्यकालीन गुजरात का हिन्दी काव्य, पृ. 9
6) वही पृ. - 9
7) आरब लोग लांट को 'लारदेश' और इसकी भाषा को लारी कहते थे।
8) गुजरात के हिन्दी साहित्य का इतिहास भाग-1 - डॉ. रमणलाल पाठक
9) गुजरातमें हिन्दी का स्वरूप और विकास - डॉ. रानु मुखर्जी
10) हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में गुजरात का योगदान - सं. डॉ. रामकुमार गुप्त, पृ. 89-90
11) डो. अम्बाशंकर नागर अभिनन्दन ग्रंथ मे डो. हरीश द्विवेदी का लेख गुजरात के कृष्ण भक्त कवि और उनका ब्रजभाषा काव्य, पृ. 248
12) गु. हि. सा. इ. डॉ. रमणलाल पाठक, पृ. 15
13) गुजरात के हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. रमणलाल पाठक, पृ. 16
14) भारत में इस्लाम - आचार्य चतुरसेन, पृ. 64
15) हिन्दी साहित्य को गुजरात के संतो की देन, पृ. 39
16) गुजरात में हिन्दी का स्वरूप और विकास - डॉ. रानु मुखर्जी - विराट अभिनंद से उदधृत
17) गुजरात में हिन्दी का स्वरुप और विकास - डॉ. रानु मुखर्जी
18) हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में गुजरात का योगदान -डॉ. रामकुमार गुप्त, पृ. 104, पृ. 105
19) कच्छनुं संस्कृति दर्शन-रामसिंह राठौड, पृ. 197
20) गुजरात के हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. रमणलाल पाठक, पृ. 15
21) कच्छ की ब्रजभाषा पाठशाला और उससे संबंधित कवियों का कृतित्व - डॉ. निर्मला आसनानी, पृ. 83
22) गुजरात एक परिचय डॉ. छोटूभाई, पृ. 108
23) गुजरात में हिन्दी का स्वरूप और विकास - डॉ. रानु मुखर्जी
24) हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में गुजरात का योगदान - रामकुमार गुप्त, पृ.107